ISSN: 2349-4654

नाद-नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूजिक वर्ष : 9, अंक : 1, अक्टूबर 2021

शिक्षक-कलाकार के रूप में स्थापित होना : एक चुनौती

प्रो. जयन्त खोत

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

आकांक्षा पाल

शोध छात्रा, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

Paper recieved on : October 7, Return on October 11, Accepted on October 21, 2021

सार-संक्षेप

एक व्यक्ति को शिक्षक-कलाकार बनाने में बहुत से संयोगों का साथ मिलना अत्यन्त आवश्यक होता है, क्योंकि अध्यापन सिद्धान्त एवं क्रियात्मक-प्रदर्शन दोनों ही संगीत से जुड़े है तथा दोनों ही पक्षों में दक्षता होना आवश्यक है। तभी वह योग्य शिक्षक-कलाकार के रूप में उभर सकता है। सर्वप्रथम तो उसमें जन्मजात गुण एवं कला के प्रति सहज रूझान हो, वह कर्मठ हो तथा कठिन परिश्रम कर सके, तदोपरान्त पारिवारिक वातावरण हो जिसमें उसे अपनी कला साधना हेतु, पूर्ण प्रोत्साहन व अवसर प्राप्त हो सके, उसे योग्य गुरु भी मिल जाए जो निस्वार्थ भाव से उसकी कला को निरन्तर विकसित कर सके और सदैव उचित मार्गदर्शन प्रदान कर सकने में समर्थ हो। इन सबके पश्चात् उसे उचित समय आने पर मंच प्रस्तुति का सुअवसर प्राप्त हो तथा मंच पर वह अपना सर्वोत्तम प्रदर्शन कर सकने में समर्थ हो। प्रतिष्ठित होने तक कलाकार को सदैव ही अपना सर्वोत्तम प्रदर्शन श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत करना होता है क्योंकि नए कलाकारों को अवसर भी गिने-चुने प्राप्त होते है यदि उसमें भी वह असफल रहा तो भविष्य में अगला अवसर मिलने की संभावना भी काफी कम हो जाएगी। इन्हीं सब चुनौतियों के कारण शिक्षक-कलाकार के रूप में स्थापित हो पाना एक दुरूह कार्य प्रतीत होता है। शिक्षक एक कुशल कलाकार हो यह अच्छा संकेत है, परन्तु वह सैद्धान्तिक पक्ष का भी अध्यापन कर सके वह भी उसी कुशलता के साथ, वस्तुतः संगीत शिक्षण संस्थाओं को भी आज ऐसे ही दक्ष शिक्षकों की आवश्यकता है। अतः इन्हीं विचारों के साथ वर्णात्मक शोध प्रविधि को अपनाते हुए इस शोध प्रपत्र का पल्लवन हुआ है। जिसका विस्तारपूर्वक वर्णन मुख्य शोध प्रपत्र के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है।

मुख्य शब्द : शिक्षक-कलाकार, संगीत, संस्थागत संगीत-शिक्षण, परम्परागत ज्ञान, शिक्षा, संवादात्मक प्रयोजनीयता।

शोध-पत्र

प्राचीन काल से ही भारतीय सांगीतिक परम्परा के अन्तर्गत संगीत-शिक्षण पद्धति में गुरु का शिष्य को विद्यादान करना एवं शिष्य के द्वारा शिक्षा ग्रहण करने की परम्परा ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य रही है, परन्तु जो संगीत पहले गुरुकुल में रहकर ही सीखा जाता था वह आज संस्थागत संगीत-शिक्षण पद्धति के कारण सर्वसुलभ हो सका। ऐसी मौखिक एवं प्रदर्शनात्मक कला में अभिरुचि रखने वाले सामान्यजनों के लिए सामूहिक संगीत-शिक्षण प्रदान करने वाली शिक्षण संस्थाओं का श्री गणेश श्रद्धेय पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर एवं पं. विष्णु नारायण भातखण्डे के द्वारा सम्भव हो पाया।

यदि देखा जाए तो पहले के समय में कलाकार अपनी 'चीज' को केवल अपने शिष्य एवं अपनी सन्तानों को ही सिखाया करते थे, परन्तु शिक्षा के क्षेत्र में संगीत का समावेश एवं सामाजिक परिवेश में संगीत के उत्थान से संगीत का वृहद रूप से प्रचार-प्रसार हुआ जिसके कारण कलाकारों की संकुचित मनोवृत्ति में भी परिवर्तन आया फलस्वरूप नए-नए कलाकारों का अभ्युदय हुआ। शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण संस्थानों के अर्न्तगत संगीत को एक विषय के रूप में सम्मिलित किए जाने के कारण शास्त्रीय संगीत के प्रारम्भिक ज्ञान का अत्यधिक प्रसार हुआ क्योंकि संगीत के प्रायोगिक पक्ष के साथ-साथ उसके सैद्धान्तिक पक्ष का अध्ययन भी पाठ्यक्रम का एक अनिवार्य अंग होता है, जिसके कारण इन संगीत-शिक्षण संस्थानों के माध्यम से भले ही कलाकार कम तैयार हो रहें हों,किन्तु संगीत के जानकार, समझदार श्रोताओं की संस्था में अत्यधिक वृद्धि दृष्टिगत हो रही है। इनके साथ ही गायकों-वादकों की शिष्य परम्परा का भी विस्तार देखा जा सकता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि–''जब कोई कला विद्या विकसित व

परिष्कृत होते-होते सुसंस्कृत और समृद्ध हो जाती है कि कला मर्मज्ञ जन समाज में उसकी विशेष मान्यता व प्रतिष्ठा हो जाती है, तब उसकी एक परम्परा चल पड़ती है।'' [1] कलाएँ मौलिकता, प्रकृति एवं परम्परा से सृजित होकर एक नवीन परम्परा को निर्मित करती है। परम्परा शास्त्रीय कला को जीवन्त अनुभव प्रदान करती है इसके साथ ही परम्पराओं का पालन करने से व नवीन सौन्दर्य दृष्टि को अपनाने से ही कला की नींव सुदृढ़ होती है और विकास का क्रम सहज रूप से बना रहता है।

वर्तमान समय में संगीत के क्षेत्र में ऐसी बहुत सी संगीत-शिक्षण संस्थाए अपने-अपने तरीके से अपनी सेवाएँ प्रदान कर रही हैं जिसके कारण 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' का उद्देश्य पूर्ण होता दिख रहा है। यदि देखा जाए तो संगीत-शिक्षण की यह पद्धति नई नहीं है, इसका वर्णन वैदिक काल, मध्य काल एवं आधुनिक काल तक प्राप्त होता आ रहा है। पश्चात्वर्ती काल में वातावरण में उपजी विभिन्न परिस्थितियों के कारण इनका परिवर्तित स्वरूप दृष्टिगत होता है। इस प्रकार जो शिक्षा केवल रागों एवं विभिन्न गेय विद्याओं के परम्परागत शास्त्र सम्मत स्वरूप को संरक्षित करने तक ही सीमित हुआ करती थी। वह आज बहुआयामी चिन्तन का विषय बनकर शिक्षण पद्धति की नवीनता में सम्मिलित हो गई है।

वर्तमान समय में इन्हीं संगीत-शिक्षण संस्थाओं में ऐसे योग्य शिक्षक कार्यरत् हैं जिनमें एक योग्य शिक्षक के साथ-साथ एक कुशल कलाकार के गुण भी विद्यमान है। साथ ही यह शिक्षक योग्य सृजनशील, जिज्ञासात्मक वृत्ति से परिपूर्ण होने के साथ-ही-साथ स्वतंत्र विचार वाले, जिनमें विभिन्न संगीत पद्धतियों का ज्ञान है, जिससे वे उसके साथ संगीत का सम्बन्ध स्थापित करके नवीन प्रवृत्तियों को जन्म दे रहें हैं और नए विचारों को ग्रहण करके उसे उपयोग करने हेतु सदा तत्पर रहते हैं। जिससे वे छात्रो का उचित मार्गदर्शन कर सकें।

इस प्रकार आज संगीत के क्षेत्र में ऐसे बहुत से कलाकार हैं जो शिक्षण संस्थाओं में एक शिक्षक के रूप में नौकरी करते हुए संगीत साधना में लीन हैं और एक शिक्षक-कलाकार के रूप में ख्याति प्राप्त कर रहें हैं। वर्तमान समय में संगीत एवं संगीतकारों की स्थिति अपेक्षाकृत अधिक सम्मानजनक, प्रतिष्ठापूर्वक एवं सम्पन्न दिखाई दे रही है। आज कलाकार पूर्ववर्ती कलाकारों की अपेक्षा अधिक शिक्षित है और संगीत विषय को एक प्रतिष्ठित कैरियर के रूप में अपना रहा है। व्यवसाय की दृष्टि से यदि देखा जाए तो अन्य व्यावसायिक क्षेत्रों की भाँति संगीत के क्षेत्र में भी अनेक मार्ग दृष्टिगत होते हैं जिसे व्यक्ति अपने लक्ष्य एवं अपनी क्षमतानुसार कलाकार, शास्त्रकार, समीक्षक, अनुवादक, रचनाकार, लेखक, शिक्षक इत्यादि में से किसी भी क्षेत्र को अपनाकर संगीत में अपनी सेवाएं प्रदान कर सकते हैं।

जहाँ एक ओर संगीत के संस्थागत शिक्षण के प्रचार ने असंख्य शिक्षार्थियों को अपनी-अपनी रुचि व क्षमतानुसार संगीत की शिक्षा प्रदान कर इस विषय के प्रति समाज में एक जागरूकता और आदर की भावना को उत्पन्न करके इसकी संवादात्मक प्रयोजनीयता को बढ़ावा दिया हैं। साथ ही आज के कलाकार शिक्षा से सम्बन्धित नए-नए तकनीकों एवं वैज्ञानिक आविष्कारों, समय की माँग आदि से परिचित होने कारण नित्य नवीन प्रयासों के माध्यम से अपनी कला-प्रस्तुति में नवीनता ला रहें हैं। वहीं दूसरी ओर इसके कारण शिक्षक-कलाकारों के समक्ष जो चुनौतियां आ रहीं हैं। उसे भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है।

विषय की दृष्टि से यदि देखा जाए तो पाठ्यक्रम अधिक होने के कारण संस्थाओं में कार्य दिवस कम पड़ जाते हैं। जिसके कारणवश शिक्षक वर्ग न तो पूर्ण कुशलता से बता पाते हैं और न ही विद्यार्थीगण उसे प्रवीणता से ग्रहण कर पाते हैं। चूँकि संस्थागत संगीत-शिक्षण पद्धति में शास्त्र एवं क्रियात्मक दोनों ही पक्ष सम्मिलित रहते हैं ऐसे में वही शिक्षक अधिक प्रभावशाली एवं सफल सिद्ध होगे जिनका इन दोनों ही पक्षों पर समान अधिकार होगा क्योंकि एक प्रशिक्षणहीन शिक्षक विद्यार्थियों को सही दिशा-निर्देशन करने में समक्ष नहीं हो सकता परिणामस्वरूप शिक्षार्थियों को विषय सम्बन्धी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है जिसके कारण वह एक योग्य शिक्षक-कलाकार के रूप में अपने आपको स्थापित करने में असमर्थ पाता है।

प्रो. रंजना टोणपे के मतानुसार–''संगीत विषय को सभी विषयों की तरह विश्वविद्यालयीन पाठ्यक्रम में रखा गया है जबकि एक प्रयोगात्मक कला होने के कारण इसे 45-50 मिनट की कक्षा में एक साथ बहुत से विद्यार्थियों को सामूहिक रूप से सिखाना उचित नहीं है। वह भी तब जब सभी विद्यार्थी भिन्न-भिन्न आवाज गुण धर्म परिवेश के हों।'' [2]

प्रो. सृष्टि माथुर के मतानुसार–''संस्थागत संगीत-शिक्षण पद्धति में एक ही कक्षा के विद्यार्थियों को विभिन्न शैलियों या घरानों के शिक्षक के द्वारा शिक्षा प्रदान कराए जाने का प्रावधान होने के कारण विद्यार्थी किसी एक शैली को आत्मसात् नहीं कर पाता और वह एक कुशल कलाकार के रूप में स्थापित होने में स्वयं को असमर्थ पाता है।'' [3]

इसके अतिरिक्त यदि विद्यार्थी ऐसे परिवार से सम्बन्धित है जहाँ संगीत का कोई वातावरण नहीं है अथवा संगीत विषय को उपेक्षिक दृष्टि से देखा जाता है जिसके कारण संगीत के क्षेत्र में शिक्षक-कलाकार के रूप में स्थापित होना एक बड़ी समस्या के रूप में सामने आता है। क्योंकि घरानेदार परिवारों में जन्म लेने वाले को शैशव काल से ही संगीतानुकूल वातावरण व परिस्थितियाँ प्राप्त होती है। लेकिन केवल संगीत-शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त करने वाला एक साधारण विद्यार्थी जिसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि संगीत से सम्बन्धित नहीं होती है उसे एक शिक्षक-कलाकार के रूप में स्थापित करने में भिन्न-भिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। फिर भी यदि वह एक योग्य गुरु का सानिध्य प्राप्त करने के साथ ही संगीत के क्षेत्र में अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल होता है तो वह वास्तव में शिक्षक-कलाकार के रूप में अपने आपको स्थापित करने में सफल सिद्ध होगा।

चाहे गुरु-शिष्य परम्परा हो या संस्थागत शिक्षण प्रणाली या फिर इन दोनों को समन्वित करके पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी की शिक्षण पद्धति हो, यदि गुरु या शिक्षक योग्य नहीं हैं तो चाहे कोई भी शिक्षण पद्धति हो वह कभी सफल नहीं हो सकती। आज संगीत-शिक्षण के बदलते हुए रूप एवं वर्षों से चली आ रही संगीत की गुरु-शिष्य परम्परा इन दोनों के मध्य निश्चित ही जो परिवर्तन आए हैं, उस पर परस्पर चिन्तन-मनन करने की आवश्यकता है जिससे विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के मध्य एक निष्ठामूलक पद्धति विकसित हो सके।

पण्डित ओंमकार दादरकर के मंतव्य–''एक ओर जहाँ हम सब संस्थागत शिक्षण पद्धति से जुड़ते जा रहे हैं वहीं दूसरी ओर कहीं न कहीं हम परम्परागत शिक्षण से दूर होते जा रहे हैं तो इस जुड़ते और दूर होते जाने की प्रक्रिया में आज शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के मध्य प्रायः जो गुरु-शिष्य के समान, गुरु के प्रति निष्ठावान एवं दोनों के मध्य मधुर सम्बन्ध होने का सर्वथा अभाव-सा दृष्टिगत होता जा रहा है। तो यह भी एक महत्वपूर्ण कारण है शिक्षक-कलाकार के रूप में स्थापित न होने का।'' [4]

शिक्षक प्रत्येक विद्यार्थी की कण्ठ की क्षमता एवं मानसिक स्तर का ज्ञान रखते हुए ही उसे आगे बढ़ाता है। एक शिक्षक-कलाकार को अपने व्यक्तिगत अनुभवों से यह ज्ञान होता है कि किन शिक्षण युक्तियों व विधाओं का प्रयोग किस समय करना चाहिए। जिस प्रकार संगीत शिक्षक स्वयं अपनी तालीम, रियाज एवं साधना में निरन्तरता बनाए रखते हुए एक लक्ष्य को अर्जित करने में सफल होता है यदि ठीक उसी प्रकार उसे शिक्षार्थी को अपने अनुभव व परिपक्वता के आधार पर कुशलता से मार्गदर्शन करते हुए लक्ष्य की ओर ले जाने का दायित्व निभाना चाहिए। परन्तु यदि एक शिक्षक-कलाकार अपरिपक्व विद्यार्थियों को सिखाएगा तो निश्चित ही उसके कण्ठ एवं गाने पर प्रभाव पड़ेगा जिसके कारण उसे एक कुशल शिक्षक-कलाकार के रूप में स्थापित करने में समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है।

प्रो. ओजेस प्रताप सिंह के मंतव्य–''किसी भी प्रदर्शनात्मक कला के दो भाग होते हैं–पहला ज्ञान एवं दूसरा कौशल यदि ज्ञान थोड़ा कम है लेकिन कला कौशल अच्छा है तो उसको लोगों के सम्मुख Successfully & Beautifully सही तरीके से प्रदर्शित किया जा सकता है परन्तु यदि ज्ञान अधिक है लेकिन उसे प्रदर्शित करने का कौशल नहीं है। कहने का तात्पर्य है कि यदि व्यक्ति में यह दोनों ही गुण समान रूप से नहीं होगें तो वह कभी भी एक योग्य शिक्षक-कलाकार के रूप में स्थापित नहीं हो पायेगा। इसी कारण शिक्षक तो बहुत है लेकिन कलाकार के रूप में कम दृष्टिगत होते है।'' [5]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि संगीत विद्यार्थी को एक शिक्षक-कलाकार के रूप में स्थापित होने में गुरु एवं विभिन्न संगीत शिक्षण संस्थाओं का सर्वाधिक महत्व है क्योंकि यदि शिक्षार्थी में जन्मजात गुण है वह परिश्रम एवं संघर्ष करने को भी तत्पर है, पारिवारिक प्रोत्साहन भी प्राप्त हो रहा है परन्तु उसे उचित समय पर योग्य गुरु का सानिध्य प्राप्त नहीं होता है और यदि योग्य गुरु का मार्गदश्रन भी मिल जाए तो उचित अवसर आने पर अपनी प्रतिभा को दर्शाने हेतु मंच प्रदर्शन का अवसर प्राप्त नहीं होता तो समय के साथ उसकी प्रतिभा का ह्रास होता जाएगा। इसी कारण एक कुशल शिक्षक-कलाकार को उचित समय पर उचित अवसर प्राप्त होना अत्यन्त आवश्यक है तभी वह स्वयं को एक योग्य शिक्षक-कलाकार के रूप में स्थापित कर पाएगा।

इतना सब होने के पश्चात भी यह मार्ग इतना सरल नहीं है। इसमें अपेक्षाकृत बहुत अधिक संयम, धैर्य एवं दृढ़ संकल्प होने की आवश्यकता है। प्रतिकूल परिस्थितियों में तो प्राणी को धैर्य बनाए रखना चाहिए वर्ना इस क्षेत्र में कभी-कभी अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त होने पर भी व्यक्ति धैर्य खोने लगता है क्योंकि कलाकार के रूप में स्थापित होने के मार्ग में परिस्थितियाँ सदैव एक सी नहीं रहती, कभी बहुत सारे अवसर प्राप्त होते है तो कभी एक भी अवसर मिलने में वर्षो लग जाते है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी किसी पारिवारिक समस्या के कारण भी कठिनाईयों का सामना करना पडता है। चूँकि मानव जीवन में यह उतार-चढ़ाव प्रतिष्ठित होने तक चलता ही रहता है। इन सभी चुनौतियों का धैयर्पूर्वक सामना करते हुए अपने लक्ष्य के प्रति पूर्ण समर्पित एवं अग्रसर रहना ही एक योग्य शिक्षक कलाकार का सर्वश्रेष्ठ गुण है।

सन्दर्भ सूची

1. कुमार, ऋषितोष, संगीत-शिक्षण के विविध आयाम, नई दिल्ली-कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, प्रथम संस्करण-2010, पृ. 98
2. टोणपे, रंजना (गायन विभाध्यक्ष) राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं कला विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.) से लिए गए साक्षात्कार के अनुसार।
3. माथुर, श्रुष्टि (गायन विभागाध्यक्ष) भारतखण्डे संगीत संस्थान अभिमत विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.) से लिए गए साक्षात्कार के अनुसार।
4. दादरकर, ओमकार, संगीत रिसर्च अकादमी, कलकत्ता से लिए गए साक्षात्कार के अनुसार।
5. सिंह, ओजेस प्रताप, संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली से लिए गए साक्षात्कार के अनुसार।